ज़मीन का आखिरी टुकड़ा

–इब्राहिम शरीफ़

माँ आँगन में चारपाई पर लेटी हुई थी। मेरी आवाज सुनकर उठ बैठीं। मैंने अटैची चारपाई के पास ही रख दी। माँ के पैर छुए और उनके पास बैठ गया। माँ मेरे पास सरक आयी, अपने दोनों पंजे मेरे गालों पर रख दिये और रुआँसी हो गयी।

बड़े दादा और बच्चे भीतर खाना खा रहे थे। आवाज सुनकर आँगन में आ गये। छोटे दादा भी आये हुए थे। बच्चे जूठे हाथों से आकर चिपट गये। मैं उठकर खड़ा हो गया। माँ बोलीं–हाथ–मुँह धोकर खाना खा लो, सफर में थक गये होंगे।

मैंने अटैची उठा ली और अंदर चला आया।

भाभी रोटी सेंक रही थीं। मुझे देखकर हाल पूछा। मैंने कपड़े बदले। सहन में जाकर हाथ–मुँह धोया। लौटकर खाना खाने बैठ गया। मैंने छोटे दादा से पूछा–आप कब आये?

जवाब बड़े दादा ने दिया–परसों सुबह।

–भाभी और बच्चों को नहीं लाये?

–ना।

–बच्चे कैसे हैं?

–मजे में हैं। तुमको याद करते रहते हैं। छोटे दादा ने कौर मुँह में रखते हुए कहा।

दाल में नमक कम था। मैंने थोड़ा नमक लेकर दाल में घोल लिया। बड़े दादा

बोले–तार मिल गया था?

–हाँ।

–मैंने सोचा था, तुम परसों ही आ जाओगे।

–छुट्टी नहीं मिली।

उन्होंने कौर चबाते हुए मेरी तरफ देखा। कुछ–कुछ नाराजगी के साथ बोले–तुम्हारी यह शिकायत कभी दूर भी होगी?

–मैं क्या कर सकता हूं? फैक्टरी के नियम ही ऐसे हैं...नौकरी भी तो करनी है।

उन्होंने गिलास उठाकर मुँह से लगा लिया। बच्चे खाना खा चुके थे। बड़े दादा उठे, बाहर जाकर हाथ धो आये। खूँटी पर टंगी हुई कमीज की जेब में से बीड़ी निकालकर सुलगा ली, दीवार से पीठ सटाकर बैठ गये। छोटे दादा भी खाना खत्म कर चुके थे, मगर वहीं बैठे रहे।

बीड़ी के चार–छः कश लगाकर बड़े दादा बोले–तुम्हें पता है, दो साल बाद तुम घर आये हो?

–माँ की तबीयत ठीक ही तो है...आपने तार किसलिए दिया था?

मेरी कटोरी में दाल खतम हो गयी थी। मैंने थोड़ी दाल और लेकर उसमें नमक मिला लिया।

–क्या माँ के मरने के बाद ही आने का इरादा था?

–बड़े दादा, आप भी क्या बात करते हैं... मैं जानबूझकर थोड़े यहाँ नहीं आता हूँ? मैंने गिलास के बचे पानी में ही उँगलियाँ डुबा दीं।

–तो तुम ही बताओ, ये भी तो नौकरी करते हैं...मगर साल में एक बार हाल तो पूछ जाते हैं... तुम्हारे तो बीवी–बच्चे भी नहीं हैं...

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। छोटे दादा को शायद लगा कि मैं इन सवालों से दुखी हो गया हूँ। वह जैसे स्थिति को संभलाते हुए बोले–मेरी तो सरकारी नौकरी है न दादा... चाहे जब छुट्टी ले सकता हूँ, किसी न किसी बहाने...प्राइवेट में दिक्कत होती है...।

बड़े दादा ने बीड़ी का टोंटा जमीन पर रगड़ दिया। मेरी तरफ फिसलती निगाह से देखा। बोले–तुम कभी शीशे में अपनी शक्ल भी देखते हो?

उनका सवाल सुनकर मुझे हँसी आ गयी। मुझे हँसता देखकर छोटे दादा और

पास में बैठे हुए बच्चे भी हँस पड़े। भाभी चूल्हें के पास ही बैठी खाना खा रही थीं। शायद दाल खत्म हो गयी थी। हर दूसरे-तीसरे कौर के साथ वह कुर्र करके प्याज कुतर रही थीं। बड़े दादा ने आगे पैर पसार लिये थे। मैंने उनकी तरफ देखा। उनकी खोपड़ी बिल्कुल गंजी हो गयी थी और गाल खासे पिचक गये थे। मेरे भीतर कुछ हिल-सा गया। मैंने उनसे कहा-बड़दा, आपकी सेहत काफी गिर गई है।

उन्होंने उठकर जेब में से एक बीड़ी और निकाल ली। बोले-तुम अपनी पर तो ध्यान दो... देखी है, शकल कैसी निकल आयी है, बिज्जुओं जैसी... इसीलिए तो कहता हूँ, शीशे में अपनी शकल देख लिया करो।

मैं बड़े दादा के बारे में सोचने लगा। मुझे ठीक से याद भी नहीं है, मेरे पिता कब मर गये थे। मुझे पाला-पोसा बड़े दादा ने ही। छोटे भाई की तरह नहीं, अपने सगे बेटे की तरह, मुझे ही नहीं, छोटे दादा को भी। हमें पढ़ाया-लिखाया। काम-धंधे के लायक बनाया। जब मेरे पिता चल बसे थे तब उनकी उम्र सिर्फ सत्रह साल की थी और साल भर पहले ही उनकी शादी हो चुकी थी। मगर जायदाद में अपना हिस्सा लेकर वह अलग नहीं हो गये थे। परिवार के सारे बोझ को कंधों पर धर लिया। माँ, चाची, दो छोटे भाई, बीवी। सभी को समेटे रखा। चाची की मौत-मिट्टी की, छोटे दादा की शादी की, इस सबके बदले में किसी से कुछ नहीं चाहा। अपने ही सिर के बाल उड़ा लिये। गाल पिचका लिये। जिल्लतें सहीं। मगर शू नहीं किया। इस सबके बीच इतना जरूर हुआ कि पिता की छोड़ी हुई जायदाद धीरे-धीरे सरकने लगी। कर्जदारी बढ़ने लगी। फांकों ने हमारी दहलीज में झाँकना शुरू किया। तगादों की आवाजें बुलंद होने लगी। बीच बाजार में उनके गिरेबान परम जबूत पंजे पसरने लगे। फिर भी उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। आगे चलते गये, दोनों कंधों को बोझ से दबाये ही।

मैं उठकर बाहर आँगन में आ गया। मेरे पीछे छोटे दादा भी आ गये। माँ लेटे-लेटे माला फेर रही थीं। मुझे देखकर चारपाई पर एक तरफ हो गयी। मैं उनके पास बैठ गया। छोटे दादा सामने वाली चारपाई पर बैठ गये। माँ ने माला समेट कर तकिये के नीचे रख दी। बोलीं-खाना खा लिया? खाया क्या होगा, कोई सब्जी भी तो नहीं थी। मैंने माँ के कंधे पर हाथ रख दिया।

भाभी भीतर चौका साफ कर रही थीं। बच्चे शायद सोने की तैयारी कर रहे थे। बड़े दादा उठकर आये। सामने वाली चारपाई पर बैठ गये। भीतर की रोशनी बाहर आँगन में पड़ रही थी। बेहद मामूली-सी। शक्लों की शिनाख्त भर करने लायक बड़े

दादा थोड़ी देर चुपचाप बैठे रहे। फिर चारपाई पर लेट गये। छोटे दादा ने मुझसे पूछा-तुम्हारी फैक्टरी में कितने आदमी काम करते हैं?

-सात सौ।

-सात सौ? बहुत बड़ी फैक्टरी होगी।

-और क्या।

-बड़े दादा ने लेटे-लेटे पूछा-तुम्हारी तनखाह बढ़ी है कि नहीं?

-बढ़ी है...अठारह रुपये?

-बस पाँच साल में अठारह रुपये?

-पार साल ही तो मैं पर्मानेंट हुआ हूं... मालिक हरामी है....

-क्या कहता है? छोटे दादा ने पूछा।

-कहता क्या है? ...वर्कर्स के साथ बेरहमी दिखाता है। धमकी दो तो यूनियन के नेताओं को खरीद लेता है या सिर फुड़वा देता है।

सिर फूटने वाली बात से शायद बड़े दादा चकरा गये। झट से उठ बैठे। उस झीनी रोशनी में मेरी तरफ गौर से देखने की कोशिश की। बोले-तुम इन झंझटों में पड़ते तो नहीं हो न? अलग ही रहा करो...

-बड़दा, आप भी कैसी बात करते हैं। हर आदमी इसी तरह अलग रहेगा तो हक के लिए लड़ेगा कौन?

छोटे दादा शहर में नौकरी करते है। वह मेरी बात समझ गये। मेरा समर्थन करते हुए बोले-यूनियन के कामों से ऐसे अलग रहकर काम नहीं चलता दादा...

बड़े दादा फिर लेट गये। बोले-सो तो ठीक है, फिर भी होशियारी से काम लेना चाहिए... छोटू वहां रहते भी अकेले हैं न...

माँ को शायद नींद आ रही थी, उन्होंने भी यही ताकीद दुहरा दी और आँखें मूँद लीं। भीतर भाभी भी काम से निपट कर बच्चों के पास ही सो गयी थीं। थोड़ी देर चारों तरफ चुप्पी छायी रही।

लेटे-लेटे ही अचानक बड़े दादा बोले छोटू मैंने वह बची हुई जमीन बेच दी है।

मैंने कोई जवाब नहीं दिया तार पाने के बाद मुझे जो ख्याल आया था वह ठीक ही था। छोटे दादा ने जैसे खुलासा किया-बेच देना ही ठीक था... वरना बेकार में ब्याज

चढ़ जाता... फिर तो जमीन बेचकर भी कर्जा चुकाना मुश्किल हो जाता....

–तुम लोगों से पूछे बिना ही यह फैसला ले लिया। बड़े दादा के स्वर में रंज था।

–हमसे पूछते तो हम भी यही सलाह देते...

–करता क्या, कर्जदार मेरी जान खाये जा रहा था।

–खैर छोड़िए, फिकर करने की कोई बात नहीं।

माँ ने करवट बदली। उनकी नींद उचट गयी थीं। या लेटे-लेटे वह चुपचाप हमारी बातें सुन रही थीं। बोलीं–तुम्हारे पिताजी की वह आखिरी निशानी थी... वह भी चली गयी।

बड़े दादा उठ कर चुपचाप बैठ गये। मैंने माँ को ढाढ़स दिया– निशानी–विशानी कुछ नहीं होती माँ। पिताजी ने हमारी ही जरूरतों के लिए ही तो जमीन रखी थी।

बड़े दादा उठकर भीतर गये। घड़े में से पानी लेकर पिया। बीड़ी सुलगाई। वापस आकर चारपाई पर बैठ गये। बीड़ी के दो–चार तेज कश खींचे और अपने आप बड़बड़ाने लगे–हमारी जमीनें इतनी जल्दी नहीं बिकतीं... लेकिन आधी तो सूद पर ही चली गयी... गाँव में और कोई भी तो नहीं है। कर्जा देने वाला यही साला अकेला इब्बू है... इसका ब्याज तो आग जैसा है...जलाकर राख कर देने वाला.... साल भर गुजरा कि नहीं, कर्जे की रकम दुगुनी हो जाती है... जरूरतमंद करे भी क्या.... इसी तरह कर्ज लेता रहेगा, इसी तरह अपने आप को बेचता रहेगा... यह हरामी इब्बू गांव में किसी को जिंदा नहीं छोड़ेगा...सब को खा जायेगा....

छोटे दादा को शायद नींद आ रही थी, बोले–दादा, जाकर सो जाइये। कल सुबह तड़के उठना भी तो है। पहली बस से जाना ही ठीक रहेगा...

–हाँ छोटू, कल चलना है रजिस्ट्रार आफिस को... मैंने चार–पाँच दिन पहले ही कागजात तैयार करवा लिये हैं... बस तुम्हारा इंतजार था... तुम्हारा तार मिलने के बाद वकील के कारिंदे से भी कह दिया, कल सुबह चलने के लिए.... गाँव वालों का भी क्या भरोसा... खरीदार के कोई कान भर देगा तो वह मुकर न जाये... फिर और किसी को खरीदने भी नहीं देगा इसलिए रजिस्ट्री कल ही हो जानी चाहिए... क्या खयाल है? सुबह की बस से चलोगे तो शाम तक लौट आयेंगे...वरना रात हो जायेगी... माँ को भी तो साथ चलना है न.... रात हो जायेगी तो इनको तकलीफ होगी... उन्होंने बीड़ी का टोंटा फेंक दिया, उठे, सोने भीतर चले गये। माँ ने पैरों के पास पड़ा हुआ कंबल खींच कर ओढ़ लिया। छोटे दादा दूसरी चारपाई पर पसर गये। मैं माँ की बगल में ही सिकुड़ गया।

मच्छरों की वजह से रात को ठीक से नींद नहीं लगी। सबेरे ढंग से आँख लगी कि भाभी ने जगा दिया। बड़े दादा शायद वकील के कारिंदे के पास गये हुए थे। माँ कंबल ओढ़े मेरे पास वाली चारपाई पर बैठी होंठों में कुछ बुदबुदा रही थीं। छोटे दादा शायद दातून कर रहे थे। मुझे जगाकर भाभी बोलीं–लाला उठो, जाना नहीं है?

मैंने आँखें मलीं। देखा, पास के नीम के पेड़ पर आठ–दस चिड़ियाँ चहक रही हैं। नीम की पतली–सी टहनियाँ हल्की–सी हवा के झोंकों की वजह से हौले–हौले झूल रही हैं। मैंने आवाज दी–भाभी, क्या चाय बन सकेगी? भाभी ने कोई जवाब नहीं दिया। शायद मेरी आवाज सुनी नहीं हो। मैं उठकर भीतर गया। बच्चे टेढ़े–मेढ़े सो रहे थे। भाभी आटा गूँध रही थीं। मैंने दुबारा पूछा–चाय नहीं बनाओगी?

इतने में छोटे दादा अंदर आ गये। शायद उनको भी चाय की तलब लगी थी। भाभी बोलीं–पत्ती है और गुड़ भी... दूध आने में देरी होगी।

मैंने छोटे दादा से पूछा–बिना दूध की चाय पी लेंगे आप? वैसे होती शानदार है। भाभी से मैंने चूल्हा जलाने को कहा और खुद चाय बनाने बैठ गया।

बड़े दादा आ गये। भाभी को आटा गूँधते देख कर बरस पड़े–अभी तक तुमने कुछ बनाया नहीं है? हम क्या दस बजे तक यहीं बैठे रहेंगे? मैंने उन्हें भी थोड़ी–सी चाय दी। भाभी पराँठे सेंकने लगीं। बड़े दादा से बोलीं–ले जाने के लिए भी चार–छह पराँठे सेक दूँ? अचार के साथ खा लेना... माँजी बाहर का खाना खायेंगी भी नहीं।

मैं हाथ मुँह धोकर तैयार हो गया। हम लोगों ने नाश्ता किया। माँ ने सिर्फ आधा पराँठा खाया। उनका चेहरा उतरा हुआ था। मैंने सोचा, शायद उन्हें अपने पति की याद आ रही होगी। उनकी छोड़ी हुई जमीन का आखिरी टुकड़ा भी तो बिका जा रहा है। माँ ने पानी पिया और माला लेकर बैठ गयीं।

भाभी ने पराँठे एक पुराने अखबार में लपेट कर झोले में रख दिये। एक खाली लोटा भी साथ में रख दिया, पानी–वानी पीने के लिए। माँ ने कहकर उससे अपनी शाल भी रखवा ली। झोला हाथ में लेते हुए बड़े दादा ने भाभी से पूछा–हम पांच जनों के लायक खाना रख दिया है न?

–पाँच कौन, हम चार ही तो हैं? मैंने पूछा।

–वह वकील का कारिंदा भी साथ चल रहा है न...उसी ने तो कागजात तैयार

किये हैं.... जमीन के रुपये भी तो वही साथ लायेगा।

माँ की तरफ देख कर बड़े दादा ने कहा- माँ चलें?

मैंने माँ की तरफ नहीं देखा। छोटे दादा और मैं बाहर आ गये। माँ बड़े दादा के साथ चलने लगीं। बाहर आकर बोलीं-बेकार में जायदाद में मेरा हिस्सा भी लिखा गये हैं...वरना मेरे ये बार-बार के चक्कर नहीं होते... गाँव में फजीहत अलग से... मैंने ही कौन-सी जायदाद बचा ली है?

किसी ने उनकी बात का कोई जवाब नहीं दिया। चुपचाप चलने लगे। तीन साल पहले, सर्दियों में माँ के दाहिने हाथ और पैर पर लकवे का जो हमला हुआ था, उसका असर अब तक था। वह दाहिने हाथ से पानी का भरा लोटा भी ढंग से उठा नहीं पाती थीं। और चलते हुए दाहिने पैर को घसीट कर चलती थीं। इनके इलाज के लिए दादा ने जो पैसा उधार लिया था, उसका भी एक हिस्सा था जमीन की बिक्री में। पता नहीं छोटे दादा क्या सोच रहे थे लेकिन उनके साथ चलते हुए मेरे दिमाग में यही सारी बातें कुलबुला रही थीं।

हम लोग बस के समय से पहले ही अड्डे पर पहुँच गये। लेकिन वह वकील का कारिंदा अब तक नहीं पहुँचा था। बड़े दादा व्यग्र होकर उसकी राह देखने लगे। छोटे दादा को भी बेचैनी होने लगी। माँ भी माला फेरने के दौरान बीच-बीच में उसके न आने की वजह पूछने लगी। मैं थोड़े से घेरे में चहलकदमी करने लगा। हम लोग उसकी राह देख ही रहे थे कि बस आयी और निकल गयी। बड़े दादा की बेचैनी बढ़ गयी। वह बार-बार बीड़ी सुलगाने और बड़बड़ाने लगे-पता नहीं क्या बात हो गयी। सुबह भी मैं उससे मिला था, उसने ऐसी कोई बात नहीं कही थी... तो अब आया क्यों नहीं? साले इब्बू ने तो कोई अड़ंगा नहीं अड़ा दिया होगा।

छोटे दादा दो-चार बार जिज्ञासा दिखा कर गुमसुम हो गये। मैं माँ के पास बैठ गया। बड़े दादा पास में पड़ी हुई बड़ी-सी चट्टान पर उकडूं बैठकर बेचैनी से थूकने लगे। छोटे दादा ने उसे दूर से आते हुए देख लिया। उत्साह में उछल कर बोले-दादा, वह आ रहा है। यह बात सुनते ही उन्होंने उँगलियों में फंसी हुई बीड़ी परे फैंक दी, तेजी से उठ कर खड़े हो गये। वह अपनी बड़ी-सी बेढब तोंद को झुलाता हुआ हाथी के बच्चे की तरह चला आ रहा था।

उसके पास आते ही दादा लपक पड़े-क्या बात हो गयी थी चाचा? बड़ी आँखे दुखाई तुमने। तेज चलने की वजह से वह शायद थक गया था। उसी चट्टान पर बैठ कर हाँफने लगा। बीच-बीच में दाँत ऐसे चलाने लगा जैसे जुगाली कर रहा हो। मैंने देखा उसकी कमीज की जेब बेहूदगी की हद तक बड़ी है और उसमें तरह-तरह के कागज ठुँसे हुए हैं। उसने जेब में तीन-चार रंग-बिरंगे पेन लगा रखे हैं। हाथ में एक झोला है जो शायद कागजों से ही भरा हुआ है। उसने साँस धीमी की और बोला-क्या करता, इब्बू ने रुपये देने में देरी कर दी। सुबह सात बजे ही मैं उसके घर पहुंच गया था। लेकिन पैसे वालों के नखरे तुम जानते ही हो। इसी में देरी हो गयी। चलो कोई बात नहीं, अगली बस से चलेंगे। बड़े दादा ने एक बीड़ी और सुलगा ली।

रजिस्ट्रार के दफ्तर पर जब हम पहुंचे तो दोपहर के खाने का समय हो गया था। साहब खाना खाने घर चले गये थे। दोनों क्लर्क दफ्तर में ही बैठे खाना खा रहे थे और सामने बैठी हुई टाइपिस्ट लड़की को देखे जा रहे थे। चपरासी स्टूल पर बैठा बीड़ी पी रहा था। हम लोग वहां पहुँचे तो वह उठ कर खड़ा हो गया और हमारे साथ वाले आदमी को बड़े जोश से नमस्ते की। उसने हमारी तरफ भी मुसकराती निगाहों से देखा। शायद उसे हमारी शिनाख्त हो गयी थी। पिछले दस सालों में यह पाँचवी या छठी बार हम लोग वहाँ गये थे। इसी तरह तीन भाई और माँ। हाँ, पहले एकाध बार हमारी चाची भी साथ थीं जो हमारी ही तरह बिकी हुई जमीनों की हकदार थीं। लेकिन वह बार-बार यह जहमत उठाने से बच गयीं और चल बसी थीं। इन्हीं सारी बातों के साथ ही यह सवाल भी मेरे दिमाग में चक्कर काटने लगा कि सरकार को यह क्या सूझी कि इतने मामूली से कस्बे में रजिस्ट्रार आफिस खोल रखा है। क्या और कोई जगह नहीं मिली होगी? सब कुछ हास्यास्पद था। मैं सोचता रह गया।

बस से उतर कर यहाँ तक पैदल चलने की वजह से माँ थक गयी थीं। उन्हें प्यास लग आयी थी और शायद भूख भी। मैंने माँ से पूछा-माँ, खाना खाओगी?

यह बात सुन कर हमारे साथ के कारिंदे ने अपनी फैली हुई जेब में से कागजों का पुलिंदा निकाला और उसके बीच में तह करके रखे हुए नोटों में से एक दस रुपये का पत्ता बड़े दादा की तरफ बढ़ाते हुए बोला-तुम लोग जा कर पास के ढाबे में खाना खा लो... अब हमारा काम तो ढाई बजे ही होगा.... मैं साहब के घर जा कर कह दूंगा कि हमारा काम जरा जल्दी कर दें.... आफिस में कहना ठीक नहीं रहेगा... उसने मेरी तरफ देख कर मुस्करा दिया जैसे यह कहना चाहता हो कि हथेली की गर्मी को तुम्हारे शहरों के दफ्तर वाले ही नहीं, हमारे गाँवों और कस्बों के दफ्तर वाले भी जानते-पहचानते हैं।

बड़े दादा ने नोट नहीं लिया। बोले-हम खाना ले आये हैं। छोटे दादा को शायद

उसका नोट देना अच्छा नहीं लगा। वह आवाज में कुछ तुर्शी भरते हुए बोले, हमारी तरफ से तुम ही रख लो चाचा... तुम्हें भी तो खाना खाना है...शायद उसकी समझ में बात नहीं आयी। वह हीं-हीं करके हँसने लगा। जब वह साहब से मिलने के लिए उसी तरह झूलता चला गया, छोटे दादा हिकारत से बोले-हरामजादा, खाना खाने के लिए हमें पैसे देने लगा है... लोगों के कागज-पत्तर लिख कर चार पैसे क्या कमा लिये हैं, साले का दिमाग फिर गया है... वो दिन भूल गया जब इसकी माँ हमारे घर पर अनाज बीना करती थी, दो जून रोटी के लिए... स्साला... मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि अचानक वह इस तरह गुस्सा क्यों हो रहे हैं, अपनी फितरत के खिलाफ। मैं सोचने लगा, पिता की सारी जमीन के बिक जाने का उन्हें जो दर्द हो रहा है, उसे वह झेल नहीं पा रहे हैं। प्यास की वजह से माँ का गला सूख गया था। वह धीरे से खाँसने लगीं। बड़े दादा बोले-चलो, सामने के बगीचे में चल कर खाना खा लेते हैं... इब्बू साले की वजह से इतनी देरी हो गयी...वरना अब तक काम पूरा हो गया होता, दो बजे वाली बस से लौट भी जाते। माँ को चलने में तकलीफ हो रही थी। वह आज अपनी शक्ति से बढ़कर चल चुकी थीं। छोटे दादा ने उनकी बाँह पकड़ ली और धीरे-धीरे चलने लगे। हम लोग सड़क पार करके बगीचे के पास आ गये। बड़े दादा वहीं खड़े माली को ऊंची आवाज में पुकारने लगे। आठ-दस आवाजों के बाद माली ने जवाब दिया।

-क्या हम कुँए पर बैठ कर खाना खा लें?

-आ जाइए, इसमें पूछने की क्या बात है?

माली को आजाद हिंदुस्तान की हवा अभी नहीं लगी है। मैं धीरे-धीरे चलते हुए सोचने लगा।

-तुम्हारे यहां का कुत्ता बड़ा खतरनाक है। भई...बड़े दादा को कुत्तों से नफरत थी और डर भी।

-डरिए नहीं, वह कुछ नहीं करेगा...मैं जो आप से बात कर रहा हूं।

माली ने ही कुएं से एक बाल्टी पानी निकाल कर दिया। हम लोगों ने हाथ मुँह धोये। माँ ने खाने से पहले ही लोटा भर पानी पी लिया। हमने खाना खाया। अब भी माँ ने आधे पराँठे से ज्यादा नहीं खाया। वह खाली पानी पीती रहीं। बड़े दादा ने कुल्ला किया। सरक कर पेड़ के तने से सट कर बैठ गये। बीड़ी सुलगा ली? मैंने झोले में से शाल निकाल कर जमीन पर बिछा दी। माँ को थोड़ी देर आराम करने के लिए कहा। बड़े दादा बीड़ी पीते हुए पेड़ के पत्तों की तरफ देख रहे थे। बोले-छोटू, अब तुम्हें

अपनी आदतें सुधारनी होंगी... देख रहे हो न, बित्ता भर जमीन भी अब हमारी नहीं रही है। मैंने उनके चेहरे की तरफ देखा। लगा जैसे हवाइयां उड़ रही हैं। मैंने गर्दन झुका ली। उन्हें किसी तरह का जवाब देने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। उन्होंने बीड़ी फेंक दी। कुछ रूखें स्वर में बोले-समझ रहे हो, मैं क्या कह रहा हूँ?

-जी...

-जी-जी से काम नहीं चलेगा, हमें अपने पिताजी की जमीन वापस खरीदनी है... यह तुम दोनों से ही हो सकता है।

-आप अपने यहां के इब्बू हरामजादे का कलेजा फाड़ दीजिए... मैं अपनी फैक्टरी के मालिक की बोटियां नोच लूँगा... और ये...ये अपनी सरकार की गर्दन काट देंगे... तभी हम अपने पिताजी की जमीन वापस कमा सकते हैं... खतम कर सकेंगे इब्बू को आप?

मैं उठकर खड़ा हो गया। मेरा जिस्म हलका-सा झूल रहा था। शायद गुस्से के अतिरेक की वजह से। मैं जा कर थोड़ी देर कुएं पर खड़ा रहा, फिर लौट आया। बड़े दादा उसी तरह चुपचाप बैठे हुए थे। माँ शायद मेरी कड़कती आवाज सुन कर घबरा गयी थीं। वह उठकर बैठ गयीं। काफी देर तक कोई कुछ नहीं बोला। बड़े दादा के लटक आये हुए चहेरे को देख कर छोटे दादा को रहम हो आया था। वह धीमी आवाज में बोले-दादा, छोटू ठीक ही कह रहे हैं...इन हालातों में कोई भी अपनी खोई हुई जमीन दुबारा खरीद नहीं सकता... आप ही सोच कर देखिए, हम लोग भला जमीन कैसे खरीद सकते हैं?

बड़े दादा कुछ नहीं बोले। जैसे गहरी सोच में डूब गये हों, छोटे दादा ने माँ को बाँह पकड़ कर उठाया। बड़े दादा की तरफ तरस खाती नजरों से देखा। बोले-चलिए, काफी देर हो गयी है.. दफ्तर में काम शूरू हो गया होगा।

हम लोग दफ्तर में दाखिल हुए। पता चला, साहब अभी नहीं आये हैं। खाना खा कर घर पर आराम कर रहे हैं। उनका कमरा अब भी बंद था। सामने के कमरे में दोनों बाबू बैठे हुए थे। एक के आगे बड़ा-सा रजिस्टर फैला हुआ था जिस पर वह कुछ लिख रहा था, दवात में कलम डुबो-डुबो कर। दूसरा बाबू पान चबाते हुए कोई कागज बहुत ध्यान से पढ़ रहा था। बायीं तरफ की खिड़की के पास बैठी टाइपिस्ट बहुत मामूली-सी रफ्तार के साथ कुछ टाइप कर रही थी। टाइप में शायद उसका मन नहीं लग रहा था। वह बीच-बीच में खिड़की के बाहर झांक रही थी। उस खिड़की के साथ

ही बरामदे में बने हुए लंबे-से चबूतरे पर हमारे साथ वाला कारिंदा लेटा सुबह की तरह जुगाली कर रहा था। चपरासी उसके पैरों के पास बैठा उससे बातें कर रहा था। उस चबूतरे के रू-ब-रू, बरामदे के दूसरी तरफ बने हुए वैसे ही लंबे चबूतरे पर कोई पाँच-छह लोग चुपचाप बैठे हुए थे। ठेठ गांव के लोग। शायद वे भी अपनी जमीन-जायदाद की बिक्री के सिलसिले में आये हुए थे।

हमें देखते ही कारिंदा उठ कर बैठ गया। चपरासी परे हठकर खड़ा हो गया। शायद उस पर मेरी और छोटे दादा की पतलूनों का रोब पड़ रहा था। कारिंदे ने पूछा-खाना खा लिया?

छोटे दादा ने माँ को एक तरफ बिठा दिया। माँ ने माला फेरनी शुरू कर दी। उन्होंने किसी तरफ कोई खास ध्यान नहीं दिया। बड़े दादा ने कारिंदे से साहब के बारे में पूछा। उसने जुगाली बंद की। बोला-सब ठीक हो गया है। साहब अभी आने वाले हैं, पहले हमारा ही काम होगा। बड़े दादा उसकी बगल में बैठ गये। उनकी बगल में छोटे दादा। मैं खिड़की के पास खड़ा हो गया। सामने के चबूतरे, पर बैठे हुए लोग उसी तरह गुमसुम थे।

साहब जब आये तो धूप काफी फीकी पड़ गयी थी। साढ़े तीन के करीब का समय था। उन्हें दूर से आते देख कर चपरासी ने भाग कर उनके कमरे के किवाड़ खोल दिये। दोनों चबूतरों के लोग उठ कर खड़े हो गये। सिर्फ माँ बैठ रहीं, उसी तरह माला फेरती हुई। हमारे साथ वाले कारिंदे ने एक बार फिर कस कर साहब को सलाम किया। उन्होंने उस पर नजर डाली तो उन्होंने होंठों पर खिली हुई मुसकराहट को चुस्ती के साथ भीतर लपेट लिया, अपने कमरे में चले गये। घंटी बजायी। भाग कर चपरासी उनके कमरे में गया। पल भर के बाद लौट आया। धीमी आवाज में हमारे साथ वाले कारिंदे से कुछ कहा। लौट कर बाबुओं वाले कमरे में चला गया।

कारिंदे ने अपने झोले में से कागज निकाले। जल्दी में उन्हें एक बार उलटा-पुलटा। तेज कदमों से जा कर पान चबाने वाले बाबू के आगे कागज रख दिये। समाने वाले चबूतरे पर बैठे हुए लोगों में भी अब चहल-पहल आ गयी थीं। उनमें से एक आदमी अपने झोले में से कुछ कागज निकाल कर देख रहा था। मैं जिधर खड़ा था, उधर से साहब के चेहरे की झलक मिल रही थी। मैंने देखा, मुझे उनका धड़ और मोटा-सा सिर ही नजर आ रहा था। बहुत गौर करने पर भी उनकी गर्दन का कहीं नामो-निशान नहीं था।

काफी देर बाद चपरासी ने आकर हम लोंगों को अंदर चलने के लिए कहा।

हम लोग बाबुओं वाले कमरे में पहुँचे, चपरासी ने एक छोटी-सी मेज पर बड़ा-सा खुला रजिस्टर लाकर रखा। उस पर खाने बने हुए थे। पहले दो-तीन खानों में कुछ लिखा हुआ था। आखिरी खानों में हम लोगों को दस्तखत करने थे। पहले खाने में माँ को, उसके नीचे वाले में बड़े दादा को, तीसरे में छोटे दादा को और चौथे में मुझे। इसी क्रम से हमारे नाम दर्ज थे। माँ दस्तखत करना नहीं जानती थीं। बड़े दादा ने चपरासी को बताया। बगल की मेज पर से बड़ा-सा रोशनाई का पैड उठा लाया। माँ के दाहिने हाथ का अँगूठा अपने हाथ में ले कर उसने पैड पर रगड़ कर काला किया। माँ को अपना अँगूठा एकदम ढीला छोड़ देने की हिदायत की और सब से ऊपर वाले खाने में अँगूठे का बड़ा-सा निशान लगा दिया निशान लगाते हुए माँ का अँगूठा काँप रहा था। चपरासी ने रजिस्टर का पन्ना पलटा। उस पन्ने पर भी सबसे ऊपर वाले खाने में माँ के अँगूठे का निशान लगाया और इसी तरह तीसरे पन्ने पर भी। उसके बाद उसने बगल में पड़े हुआ खुरदारा काला कपड़ा उठा कर माँ को दिया, अपना अँगूठा पोंछ लेने के लिए। मैंने वह कपड़ा अपने हाथ में ले कर माँ का अँगूठा अच्छी तरह पोंछा और उन्हें बाहर चबूतरे पर ला कर बिठा दिया।

मैंने देखा, माँ का चेहरा कसा हुआ है और उनके हाथ जाहिर तौर पर काँप रहे हैं। वह अपने पल्लू से आँखें पोंछने लगीं।

हम तीनों भाइयों ने तीनों पन्नों पर अपने दस्तखत कर दिये। हमें भी दस्तखतों के नीचे अपने अँगूठों के निशान भी लगाने थे। सरकार की एहतियाती सूझ पर मुझे खुशी हो आयी। कहीं तो वह सजग है। यह सब कर-करा कर हम लोग भी बाहर चबूतरे के पास आ गये। बड़े दादा का चेहरा भी खासा कसा हुआ था। उनके गालों के गड्ढे कुछ और धँसे हुए लग रहे थे। वह चुपचाप बैठे रहे। छोटे दादा माँ के पास जाकर बैठ गये। हमारे साथ वाला कारिंदा बाबुओं के कमरे में ही खड़े कुछ बातें कर रहा था। हमारे सामने वाले चबूतरे पर बैठे हुए लोगों को भी यही सब करना था। उनमें से दो आदमी उठ कर चपरासी के कहने पर अंदर गये।

कोई पंद्रह-बीस मिनट बाद हमें साहब के कमरे में जाने के लिए कहा गया। हम लोग जाकर सहाब की बड़ी-सी मेज के इर्द-गिर्द खड़े हो गये। माँ के और बड़े दादा के चेहरों पर अब तक भी सहजता नहीं आ पायी थी। साहब के आगे वही रजिस्टर फैला हुआ था जिस पर हम लोगों ने दस्तखत करके अँगूठे के निशान लगाये थे। साहब थोड़ी देर कुछ पढ़ते रहे, फिर गंभीर आवाज में बोले-सुभ्रदा देवी आप ही हैं?

–जी। माँ की आवाज लड़खड़ायी।

–रामगोपाल?

–जी, मैं। बड़े दादा बोले।

–हरिशरण?

–जी, मैं। छोटे दादा ने कहा।

–राधेश्याम?

–मैं हूं। मेरे अंदर का शहर कुलबुलाने लग गया था।

–क्या आप लोगों ने जमीन अपनी मर्जी से बेची है?

–जी। बड़े दादा ने उत्तर दिया।

–कितने में?

–चार हजार नौ सौ पचास में।

–आप लोगों को रुपये मिल गये?

–जी, मिल गये।

–अब आप लोग जा सकते हैं। साहब कुर्सी की पीठ पर पसर गये।

हम लोग बाहर आ गये। हमारे साथ वाला कारिंदा चबूतरे पर बैठा कागज के टुकड़े पर कुछ लिख रहा था। बड़े दादा उसकी बगल में बैठ गये। मैंने छोटे दादा से पूछा–अब हम लोग जा सकते हैं न? उन्होंने मेरी तरफ ध्यान से देखा। अंग्रेजी में बोले कि वह भी सब कुछ से काफी ऊब गये हैं... मैंने जैसे खुद को सांत्वना देते हुए कहा– चलिए, यह आखिरी ऊब है...वह हँस पड़े। खासी फीकी–सी हँसी। गोया मुझ पर तरस खा रहे हो कि बच्चू, इस ऊब को तो आखिरी कह रहे हो, बाकी रोजमर्रे की ऊबों का क्या करोगे? मैं खिड़की में से टाइपिस्ट लड़की को देखने लगा।

यह कारिंदा कागज का टुकड़ा बड़े दादा के आगे करके उन्हें समझाने लगा– इब्बू से लिया हुआ पैसा, एक हजार छह सौ। दो साल का ब्याज, आठ रूपये सैकड़ा। हर महीने की दर से तीन हजार बहत्तर। मेरी फीस, पचास रुपये। साहब को दिये हुए साठ रुपये, दफ्तर वालों को, आठ रुपये। कुल चार हजार आठ सौ दस रुपये। बकाया एक सौ चालीस तुम्हें मिलने हैं। उसने अपनी फैली हुई जेब में से टटोल कर नोटों की गड्डी निकाली और दस–दस के चौदह नोट गिन कर बड़े दादा के हाथ में पकड़ा

दिये। मैंने देखा, रुपये लेते हुए बड़े दादा के चेहरे पर काली–सी झांई थरथरा उठी है। इस बीच वह कारिंदा फिर जुगली करने लग गया था। बड़े दादा ने रुपये जेब में रख लिये। कारिंदे ने कहा– तुम लोग जाओ...छह बजे आखिरी बस है, उससे चले जाना। मुझे थोड़ा काम है। मैं कल शाम तक घर पहुँचूँगा।

हम लोग धीरे–धीरे चलकर बस अड्डे पर आ गये। रास्ते भर कोई किसी से कुछ नहीं बोला। माँ ने सिर्फ इतना कहा– मेरी आँखों के सामने ही तुम्हारे पिताजी भी चले गये...उनकी जमीन भी चली गयी। उनका गला भर आया था। इस पर भी किसी ने कुछ नहीं कहा।

बस स्टैंड पर बैठे–बैठे सात बज गये। छह बजे वाली बस नहीं आयी थी। माँ ने इस बीच दो बार पानी पिया। माला फेरती हुई बैठी रहीं। बारी–बारी से मैं और छोटे दादा इधर–उधर जाकर बस के बारे में दर्याफ्त कर आये। और लोग भी हमारी तरह थे। किसी ने बताया, बस कहीं रास्ते में खराब हो गयी होगी। न भी आये तो कोई बड़ी बात नहीं।

बड़े दादा की परेशानी बढ़ गयी। माँ को आराम की जरूरत थी। बस नहीं आयेगी तो रात को साढ़े ग्यारह बजे मेल मिलेगा। मौसम खराब है। रात में हल्की–सी ठंड पड़ने लगती है। माँ को परेशानी होगी। क्या किया जाय? वह बड़बड़ाने लगे।

साढ़े आठ बज गये थे। कस्बे का मामूली–सा अस्तित्व जैसे रात भर के लिए अंधेरे में खोता जा रहा था। अड्डे नी इक्के–दुक्के लोग ही रह गये थे। मैंने सुझाया, स्टेशन चलेंगे। माँ निढाल हो रही थीं। स्टेशन कस्बे के बाहर था। लगभग सुनसान इलाके में। हम लोगों ने ताँगा कर लिया। ताँगे में बैठने से पहले बड़े दादा ने अपने लिए बीड़ी का बंडल और माचिस ली। एक दर्जन केले खरीद कर झोले में रख लिये। स्टेशन पर कुछ भी तो नहीं मिलता है... माँ ने दोपहर को कुछ नहीं खाया है..वह बोले।

स्टेशन बहुत छोटा–सा था और उजाड़ था। टिकटघर और स्टेशन मास्टर के कमरों में मद्धिम–सी रोशनी थी और कहीं रोशनी का नाम नहीं था। प्लेटफार्म उन दोनों कमरों जितना ही फैला हुआ था जिस पर टीन की छत थी। प्लेटफार्म के इधर–उधर काफी जगह थी, मगर खुली हुई। वहां भी रोशनी नहीं थी। प्लेटफार्म पर अनाज के या किसी चीज के भरे बोरे पड़े हुए थे, बेतरतीब। छत के नीचे की सारी जगह उन्हीं से घिरी हुई थी। शायद एक कोने में किसी और चीज के बोरे पड़े हुए थे जिनसे एक तरह की तीखी बदबू आ रही थी। मैंने सोचा, शायद कच्चे चमड़े के बोरे होंगे। उस बदबू में वहाँ बैठना संभव नहीं था, खासकर माँ के लिए इसलिए, एक तरफ खुले में बैठने के

सिवा कोई चारा नहीं था। माँ की बाँह पकड़ कर उन्हें रास्ता दिखाते हुए छोटे दादा चलने लगे। बड़े दादा ने दस रुपये का नोट निकाल कर मुझे दिया, टिकट खरीदने के लिए। टिकटघर में बाबू सो रहा था। मैंने स्टेशन मास्टर से जाकर पूछा। उसने बताया, ग्यारह बजे टिकट मिलेगी। मैंने पूछा–यहाँ कोई वेटिंग-रूम नहीं है? उसने गर्दन उठाकर मेरी तरफ देखा। मेरी पतलून पर नजर डाली। गर्दन झुका ली। मुझे उसका रुख अच्छा नहीं लगा। मैंने अंग्रेजी में कहा–यात्रियों को असुविधा होती है। उसने दुबारा मेरी तरफ देखा। अंग्रेजी में ही बोला–चुनाव लड़कर मंत्री बन जाइए, फिर इस पर सोचिए उसने ठहाका लगा दिया।

माँ शाल ओढ़ कर दुबकी बैठी थीं। मैंने कहा–अभी गाड़ी आने में काफी देर है, माँ के सोने का इंतजाम होना चाहिए।

बड़े दादा बोले–सो कैसे सकती हैं, बिछाने के लिए कुछ भी तो नहीं है।

माँ बोलीं–मैं ठीक हूं, तुम लोग फिकर मत करो। हम लोग भी माँ के साथ जमीन पर बैठ गये।

हम लोगों से थोड़ा-सा हटकर कुछ लोगों की आवाजें आ रही थीं हंसने की, बातें करने की। मैंने ध्यान से देखा। अंधेरे में किसी का चेहरा नजर नहीं आ रहा था। मैं उठ कर उन लोगों के पास गया। कोई छह-सात लोग एक-दसूरे की बगल में लेटे बातें कर रहे थे। मेरी आहट पाकर वे चुप हो गये। मैंने झुक कर उनकी तरफ देखने की कोशिश की। फिर भी किसी का चेहरा साफ नजर नहीं आ रहा थ। मैंने पूछा–क्या आप लोग भी गाड़ी के लिए बैठे हैं?

एक ने कहा–नहीं, हम तो यहीं के हैं। रेलवे लाइन का काम चल रहा है न, दिन में काम करते हैं, रात को यहीं सोये रहते हैं।

मैं उन लोगों के पास उकडूँ बैठ गया। पूछा –मेल कितने बजे आयेगा?

–बारह बजे तक आ जायेगा।

–बारह तक?

–आपको कहाँ जाना है? उनमें से तीन-चार लोग उठ कर बैठ गये थे।

–यही, चार-पाँच स्टेशन छोड़ कर, उधर।

वे लोग चुप हो गये। मैं बोला–मेरे साथ माँ और दो भाई भी हैं...बस से जाना था...बस नहीं मिली... माँ की तबीयत ठीक नहीं है.. हमारे पास कपड़े भी नहीं है...

मेरी बात सुन कर एक आदमी झट से उठ बैठा। अपने सिरहाने तह करके रखी हुई सुजनी मेरी तरफ बढ़ायी। बोला–यह लीजिए, किसी न किसी तरह थोड़ा समय ही तो काटना है। मैं धन्यवाद देकर वहां से उठा। सुजनी दुहरी तह करके जीमन पर बिछायी थी। बड़े दादा ने केले निकाल कर माँ को दिये। उन्हें शायद भूख लग रही थी। केले खा लिये। शाल ओढ़ कर सुजनी पर लेट गयीं।

हम तीनों ने भी केले खाये। वे मजदूर लोग उसी तरह बातें कर रहे थे। बीच-बीच में ठहाके लगा रहे थे। कहीं दूर पर कुत्तों के भूँकने की आवाजें आ रही थीं। आसमान पर इधर-उधर तारे टिमटिमा रहे थे। मौसम में कुछ खुनकी बढ़ गयी थी।

बड़े दादा ने बीड़ी सुलगा ली। उन लोगों में से किसी ने बीड़ी सुलगा ली। मैंने आवाज कुछ ऊंची करके उन लोगों से पूछा–आप लोगों में से किसी को बीड़ी-वीड़ी तो नहीं चाहिए? मुझे लगा, बहुत बेहूदे ढंग से कृतज्ञता दिखा रहा हूँ। उनको बीड़ी चाहिए नहीं थी।

बड़े दादा ने मुझसे पूछा–छोटू, कितने दिन की छुट्टी ले आये हो?

–कल रात की गाड़ी से चले जाना है...

–और तुम? उन्होंने छोटे दादा से पूछा।

–मैं भी कल-परसों में चला जाऊंगा।

–तुम लोगों को किराए के पैसे चाहिए न? वह बोले।

–नहीं, मेरे पास हैं। मैं बोला। छोटे दादा ने कहा–उनको भी नहीं चाहिए।

–इन एक सौ चालीस में से तुम लोग भी ले सकते हो।

मैंने उस अंधेरे में ही उनका चेहरा देखने की कोशिश की। मुझे कुछ नजर नहीं आया। उनकी आवाज के कंपन के सिवा।

मैं बोला रुक-रुक कर–बड़दा, आप फिकर मत कीजिए... अच्छे दिन आयेंगे...।

वह कुछ नहीं बोले। बीड़ी का टोंटा फेंक दिया।

कहीं किसी मुर्गे को गलतफहमी हो गयी थी। वह बांग देने लगा। सबेरा होने से पहले ही सवेरे की उतावली में।

पास के लोगों में से किसी ने पूछा–बाबूजी, कै बजे हैं?

मैंने माचिस जला कर घड़ी देखी। पौने दस, मैंने आवाज दी।

उन लोगों को नींद नहीं आ रही थी। किसी बात पर खिलखिलाकर हँस पड़े। थोड़ी देर बाद चुप्पी छा गयी। आस-पास की झाड़ियों में झींगुर बोल रहे थे। उन लोगों में से किसी ने कहा- अबे अब शुरू तो कर.... साला हर रात सताता है.... इसके साथ ही तीन-चार लोगों की आवाजें एक साथ आयीं -हाँ यार, अब शुरू कर। उनमें से किसी ने हमारी तरफ आवाज फेंकी-बाबूजी, आप लोग तो पढ़े-लिखे हैं... कोई कहानी-वहानी सुनाइए... गाड़ी के आने तक वक्त कट जायेगा....

मैंने जवाब दिया-हममें कोई कहानी-वहानी नहीं जातना।

-ऐ दुर्गा, तू सुना... सुनोगे बाबूजी? उनमें से एक बोला।

-जरूर।

थोड़ी देर खामोशी बनी रही। आसमान साफ हो गया था। तारों की संख्या बढ़ गयी थी। शायद दुर्गा बोल उठा- तो सुनिए बाबूजी..यह कहानी मैंने बचपन में अपने दादा से सुनी थी... उनको उनके नाना ने सुनायी थी।

किसी ने आवाज कसी- अबे नाना के बच्चे, कहानी तो सुना...

दुर्गा ने गला साफ किया। आवाज बुलंद की। कहने लगा-एक गाँव में एक आदमी रहता था... बहुत गरीब...

उन लोगों में से किसी ने फब्ती कसी-तेरे से भी? एक जबरदस्त ठहाका लगा। दुर्गा नाराज हो गया-साले, तू बीच में बोलेगा तो मैं कहानी ठेंगा सुनाऊंगा...

-अबे चुप रह, बीच में बोलता क्यों है?

दुर्गा ने कहानी शुरू की-हाँ, तो वह बहुत गरीब था। एक दिन वह काम-धाम की खोज में निकल पड़ा पैदल। बारह-तेरह बरस का रहा होगा। रास्ते में भूख लग आयी। रात को भी कुछ नहीं खाया था। पर करते क्या? ऐसे ही चलते रहे। चलते-चलते दिन ढलने लगा। रास्ते में दोनों ने तीन-चार जगह पानी पिया। और इसी से संतोष कर लिया। फूटी कौड़ी तो पास में थी नहीं, जो कुछ खरीद कर खा लेते।

बड़े दादा को शायद कहानी अच्छी लग रही थी।

दुर्गा बोले जा रहा था-बाप-बेटा किसी गाँव के पास पहुँचे। गाँव के बाहर कोई मेला लगा हुआ था। नगाड़े-तुरही की आवाजें आ रही थीं। लड़के के कान खड़े हो गये। उसने अपने बाप से पूछा। आवाज बाप ने भी सुनी थी। बोला, कोई मेला होगा। मेले की बात सुनकर लड़का मचलने लगा। बाप का हाथ पकड़ कर बोला, बापू मेला

देखते चलेंगे। उन्हें उसी तरफ जाना था। बाप मान गया। बाप-बेटा उधर ही चल पड़े। थोड़ी देर बाद मेले में पहुँच गये। बहुत भारी मेला लगा था। तरह-तरह की चीजें बिक रही थीं। तरह-तरह के खेल-तमाशे हो रहे थे। बाप ने लड़के को सारे मेले में घुमाया। बेचारा लड़का नदीदी आँखों से देखता रहा। शाम हो गयी तो बाप ने लड़के का हाथ पकड़ लिया। बोला, चल, शाम हो रही है, जल्दी पहुँचना है। पर लड़के को मेले में मजा आ रहा था। वह अपने बाप का हाथ पकड़े हुए इधर-उधर देखता हुआ मलने लगा।

-अब वहीं एक कोने में, एक पेड़ के तने से आठ-दस ऊँट बंधे हुए थे। लड़के की निगाह ऊँटों पर पड़ी। उसने इतने सारे ऊँट इकट्ठे कभी नहीं देखे थे। उसने बाप का हाथ पकड़ लिया। बोला, बापू उन ऊँटों को देखते चलेंगे। बाप लड़के को लेकर ऊँटों की ओर चला।

दुर्गा को शायद तलब लग गयी थी। उसने कहानी रोक कर बीड़ी सुलगा ली। दो-तीन सुट्टे मारे। बाकी टुकड़ा अपने साथी को पकड़ा दिया। फिर कहानी शुरू की-हाँ, तो वे दोनों ऊँटों के पास पहुँचे। ऊटों वाला ऊँट बेच रहा था। ऊँची आवाज में कह रहा था-ऊँट ले लो...ऊँट बीकानेरी ऊँट ... गाड़ी खिंचवा लो..रहट चलवा लो... जमीन जुतवा लो... सवारी कर लो... ऊँट ले लो... दो-दो आने का...ऊँट ले लो...

दुर्गा का कोई साथी ठठा कर हँस पड़ा-साले की हर कहानी ऐसी ही होती है.... अबे, दो आने में कहीं ऊँट मिलता है?

-अबे चुप... बीच में बकवास मत कर... वरना तेरी अकलमंदी पीछे-से निकल देंगे। तीन-चार लोगों ने टोकने वाले को एक साथ डाँटा। वह चुप हो गया। छोटे को नींद आ रही थी। वह बैठे-बैठे इधर-उधर होने लगे। बड़े दादा ने एक बीड़ी सुलगा ली। मैंने आसमान की तरफ देखा।

दुर्गा ने फिर कहना शुरू किया-तो क्या बता रहा था मैं? हाँ... तो ऊँट वाला चिल्ला रहा था, दो-दो आने का एक ऊँट...दो-दो आने का ऊँट... लड़के ने ऊँट का दाम सुना तो उसके मुँह में पानी भर आया। खुशी के मारे उसके पैर जमीन पर टिक नहीं रहे थे। सोचने लगा, हमारे पास ऊँट होता तो दिन भर हम पैदल क्यों चलते? आराम से उस पर बैठ कर चले जाते। उसने बाप का हाथ पकड़ कर खींचा और कहने लगा-बापू, एक ऊँट ले लो.... हमारे बहुत काम आयेगा। बाप ने लड़के को समझाया, बेटे पैसे नहीं हैं। लेकिन कहाँ मानने लगा। मचल गया, बापू एक ऊँट खरीद दो। अब बाप को गुस्सा आ गया। उसने लड़के का हाथ पकड़ कर खींचते हुए झिड़क दिया-अबे

चुपचाप चल, ऊँट कहाँ से खरीदेगा? कल से खाना नहीं खाया।

चलते-चलते बाप-बेटा काफी दूर चले गये। बाप आगे-आगे चल रहा था। लड़का पीछे-पीछे, लड़का बहुत थक गया था। बेचारे का चेहरा लटक आया था। उसकी आँखों के आगे ऊँट ही दिखाई पड़ रहे थे। एकाएक लड़के को अपने पैरों के पास कोई चीज दिखाई पड़ी। चमकदार चीज। लड़के ने झुक कर उठा ली। कमीज से उस पर की धूल साफ की। वह और ज्यादा चमकने लगी। लड़के ने बाप को आवाज दी-बापू,यह देखो, कोई चीज मिली है। बाप ने पीछे मुड़ कर देखा। बाप ने उलट-पलट कर देखा। बोला-बेटे, यह तो हीरा है। लड़का समझा नहीं, बोला-वह क्या होता है, बापू? बापू ने बताया-हीरा कीमती चीज होता है बेटे। बाप को बहुत खुशी हो रही थी। बेटे ने पूछा- यह कितने में बिकेगा बापू? बापू ने दुबारा उलट-पुलट कर देखा। सोच कर बोला-यह तो पाँच सौ का है बेटे। पाँच सौ। तो मुझे कई ऊंट दिला दो न बापू। लड़का तरसने लगा। बाप को बेटे पर दया हो आयी। बोला, चल तेरे लिए एक ऊँट खरीद देता हूँ। बाप-बेटा भागे-भागे मेले में लौट आये। मेला उठ रहा था। लोग बाग अपने-अपने घरों की तरफ चल रहे थे। लड़के ने उछलते हुए एक ऊँट चुन लिया। बोला, वह वाला खरीद दो बापू। बाप को भी वह ऊँट पसंद आया। उसने ऊँट वाले के हाथ में हीरा रख दिया। बोला-भय्या, वह वाला ऊँट दे दो और बाकी पैसे भी। ऊँट वाले ने हीरे को ठोंक-पीट कर देखा, बोला-यह क्या है?-यह हीरा है, बाप ने कहा-इसमें ऊँट कैसे खरीदोगे? ऊँट वाले ने पूछा। अरे, यह तो पांच सौ रुपये का हीरा है... तुम्हारा ऊँट तो दो आने का है। दे दो वह वाला ऊँट... जल्दी से .... बाकी पैसे भी लौटाओ।

-ऊँट वाले ने नाक-भौं सिकोड़ते हुए उस गरीब आदमी के हाथ में हीरा वापस रख दिया। गुस्से में बोला-क्या बक रहे हो.... अभी दस मिनट पहले ही रामपुर के राजा ने एक हजार रुपये में मेरा एक ऊँट खरीदा है... मैं तो अब हजार रुपये का ही ऊँट बेचूंगा....

-यह बात सुन कर बेचारे लड़के की साँस रुक गयी। उसके बाप को भी बहुत दुख हुआ। उसे गुस्सा भी आया। लेकिन करता क्या? वह अपने लड़के का हाथ पकड़े चुपचाप आगे बढ़ गया, हीरे को मुट्ठी में बांधे। भूखे बाप-बेटे पैर घिसटते हुए चलने लगे।

-बस, यही है कहानी। दुर्गा चुप हो गया।

थोड़ी देर चारों तरफ मुर्दानी छायी रही। कुछ देर बाद उन लोगों में से किसी ने पूछा-यार दुर्गा, कहानी तो ठीक है... पर ...तू यह बता, दो-दो आने में बिकने वाले ऊँट को उस राजा ने एक हजार रुपये में क्यों खरीदा था? क्या उस राजा को...यार उस राजा को इस बात का पता लग गया था कि वह गाँव का गरीब लड़का भी ऊँट खरीद लेगा?

किसी और ने सवाल का समर्थन करते हुए पूछा-हाँ, दुर्गा, उस राजा ने ऐसा क्यों किया था?

दुर्गा ने इस बीच बीड़ी सुलगा ली थी। बड़े दादा ने भी। कश खींचता हुआ दुर्गा बोला- मैं क्या जानूं, यार... मुझे क्या पता, राजा ने दो आने का ऊँट एक हजार में क्यों लिया था?

-मैं जानूँ... मैं जानता हूँ...बड़े दादा ने पूरी ताकत के साथ बीड़ी जमीन पर दे मारी और जोर-जोर से चिल्लाते हुए उठ कर खड़े हो गये, जैसे बौखला गये हों। उनका जिस्म काँप रहा था।

मैंने कस कर उनकी बाँह पकड़ ली। उन्हें जैसे समझाते हुए धीरे से बोला-बड़दा, आप धीरज रखिए... ये लोग... ये सब लोग भी ... आप ही की तरह जान जायेंगे... बड़े दादा अब भी काँप रहे थे। पता नहीं क्यों मेरी आँखे डबडबा आयी थीं। अँधेरे में ही मैंने बायें हाथ से आँखें पोंछ लीं।

पिछले स्टेशन से रेल के छूटने की घंटी बज उठी, अँधेरे को चीरती हुई-टन्...टन्...।

छोटे दादा माँ को जगाने लग गये थे-माँ, उठो, गाड़ी आ रही है। कहीं दूर पर मुर्गा बाँग देने लग गया था।

इब्राहिम शरीफ़

जन्म : 1939 नेन्दलूर कड़पा (आंध्र)

प्रमुख कृतियाँ : कई सूरजों के बीच, ज़मीन का आखिरी टुकड़ा (कहानी संग्रह)

दिवंगत